

कौटिल्यकालीन समाज में जाति-व्यवस्था

डॉ० शक्ति मोहन मिश्र *

जहाँ तक कौटिल्यकालीन समाज में जाति-प्रथा का प्रश्न है, वहाँ उल्लेखनीय है कि उनके पूर्व के समाज के वर्ण-व्यवस्था में विघटन की जो प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी वह इस समय भी जारी थी। इस तरह इस समय की वर्ण-व्यवस्था जाति-प्रथा के रूप में परिपक्वता प्राप्त करने की बढ़ने की दिशा में बढ़ती जा रही थी। उस समय समाज में जाति-व्यवस्था की जो प्रकृति थी उसके सम्बन्ध में विद्वानों में थोड़ी-सी मत-भिन्नता देखने को मिलती है। मेगास्थनीज, जो कि मौर्य के राज्य-सभी में से सेल्युकस का दूत होता था, न लिखा है कि मौर्यकालीन समाज में यानी की कौटिल्यकालीन समाज सात जातियों (वर्णों) में विभाजित थी। वे जातियाँ इस प्रकार थीं—

1. **ब्राह्मण और दार्शनिक**— ब्राह्मण और दार्शनिक समाज में अत्यधिक आरणीय श्रेणी की व्यक्ति थे। हालाँकि इनकी संख्या काफी कम थी। राज-दरबार में इनका विशेष स्थान होता था। ये यज्ञ एवं अन्य धार्मिक कार्यों का संपादन करते थे। इनकी सेवाओं के बदले इन्हें सभी प्रकार के करों से मुक्ति प्रदान की गई थी।¹
2. **कृषक**— ये समाज के अर्थ-व्यवस्था के मेरुदण्ड थे। स्वभावतः ये संख्या में अत्यधिक थे। ये मौलिक रूप से कृषि-कार्य में लगे रहते थे और इस कार्य में इन्हें बाधित नहीं किया जाता था। यहाँ तक कि युद्धकाल में भी उन्हें बाधित नहीं किया जाता था। इन्हें अपने ऊपज का चौथा भाग राज कर के रूप में देना पड़ता था।²
3. **ग्वाला और आखेटक**— ये पशुपालन और शिकार किया करते थे। आखेट मुख्य रूप से ये अन्य पशुओं का किया करते थे। ऐसा करके वे कृषि की रक्षा करते थे। इसके बदले इन्हें राजा से धन मिलता था। इसके अतिरिक्त वे पशुओं का व्यापार भी करते थे। इनकी सबसे बड़ी विशेषता ये थी कि इनका अपना कोई स्थायी निवास नहीं हुआ करता था। अपने खेमों को लिए हुए एक स्थान से दूसरे स्थान एक घूमते रहते थे। इस तरह से खानाबदोस की जिन्दगी बिताते थे।³
4. **व्यापारी और श्रमजीवी**—ये अनेक प्रकार के व्यवसायों और उद्योग-धंधों में लगे रहते थे। हालाँकि अपने धंधों में ये स्वतंत्र होते थे पर कुछ व्यापारियों को राज्य द्वारा निर्दिष्ट कार्य भी करने पड़ते थे। जैसे उन्हें जयज, कवच एवं अन्य प्रकार के

*एम०ए०, पीएच०डी० (संस्कृत) बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफरपुर।

शस्त्र बनाना होता था। लेकिन इन कार्यों के लिए इन्हें राजा द्वारा निर्धारित वेतन मिलता है। जिनके व्यवसाय निजी होती थी उन्हें अपने आय का एक निर्धारित हिस्सा राज्य कर के रूप में देना पड़ता था।⁴

5. **योद्धा**— ये अपना जीवन राज्य की सुरक्षा में लगाते थे और युद्ध के लिए सदैव तत्पर रहते थे। इनका सारा खर्च राज्य की ओर से वहन किया जाता था।⁵
6. **निरीक्षक**— निरीक्षक राजा के लिए बहुत ही उपयोगी व्यक्ति होते थे। चूँकि इनका काम गुप्तचरी करना भी होता था। इसलिए ये सबसे अधिक योग्य और राजा का विश्वास-पात्र होते हैं। गुप्तचरी के अतिरिक्त ये प्रत्येक राजमार्ग का निरीक्षण करते थे और इसकी सूचना राजा को दिया करते थे।⁶
7. **मन्त्री और परामर्शदाता**— हालाँकि मंत्री एवं परामर्शदाता संख्या में कम होते थे। परन्तु विद्या ओर बुद्धि में अति निपुण हुआ करते थे। राजा अपने कार्यों के संपादन में इनसे मंत्रण एवं परामर्श लिया करते थे। साथ ही ये राज्य को कार्य संपादन में सहायता भी पहुँचाते थे।

जैसा कि प्रो. रोमिला थापर ने स्पष्ट किया है कि मेगास्थनीज द्वारा जातियों का उपरोक्त वर्णन उचित नहीं जँचता है। उनका मत है कि समाज में रहने वाले जातियों का विभाजन करते समय वे वर्ण और व्यवसाय के बीच के अन्तर को समझ नहीं पाये हैं। वास्तव में उनका विभाजन समाज में रहने वाले लोगों के कार्यों एवं व्यवसायों का विभाजन है न कि जातियों का।⁷

जहाँ तक कौटिल्यकालीन भारत की जाति-प्रथा का प्रश्न है, प्रो. थापर के अनुसार उस समय के भारतीय समाज में वर्ण-व्यवस्था की थी। इसका उल्लेख सम्राट अशोक के पांचवें शिला लेख में हैं। साथ ही कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी। कौटिल्य ने अपनी उपरोक्त रचना में चारों वर्णों एवं वंशगत कर्मों का वर्णन किया है। लेकिन यहाँ स्पष्ट होना चाहिए कि वर्ण-व्यवस्था में मौलिकता के विघटन एवं परिवर्तन की जो प्रक्रिया कौटिल्य की अवधि से पूर्व ही प्रारंभ हो चुकी थी वह जारी ही थी। अतः वर्ण-व्यवस्था अपने मौलिकता को खोती जा रही थी। यह सच है कि समाज चार वर्णों में विभक्त था। और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में समाज बंटा हुआ था। पर उस समय के वर्ण-व्यवस्था में जटिलता आ गई थी। जहाँ वैदिक, रामायण एवं महाभारतकालीन समाज में रहने वाले व्यक्तियों के वर्णों का विभाजन उनके गुणा एवं कर्मों के आधार पर होता था। वहीं अब इसका आधार कर्म न रहकर जन्म रह गया था।⁸ यह सच है कि कौटिल्यकालीन समाज में वर्ण-व्यवस्था बनी हुई थी। समाज में यद्यपि कुछ छोटी-छोटी जातियों का अभ्युदय हो रहा था। परन्तु मौलिक रूप से समाज के लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों में ही विभक्त था। इस प्रकार समाज का आधार वर्ण-व्यवस्था या

वर्णाश्रम ही था। उस समय भी प्रत्येक व्यक्ति को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ और संन्यास आश्रमों से गुजरना पड़ता था राजा का यह कर्तव्य था कि समाज में प्रचलित वर्ण-व्यवस्था की रक्षा करें। पर वर्ण-व्यवस्था से भिन्न हटकर जो बातें यहाँ थी वह अब जैसा कि पहले स्पष्ट हो चुका है कि वर्ण-विभाजन का आधार कर्म न रहकर जन्म हो गया था। कोई भी अपने कर्मों के परिवर्तन के आधार पर एक वर्ण से दूसरे वर्ण का सदस्य नहीं बन सकता था। ईसा पूर्व तीसरी एवं चौथी शताब्दी से पहले के समाज में ऐसी बातें थी। विश्वामित्र मुनि क्षत्रिय होकर ब्राह्मणत्व को प्राप्त किये हुए थे जबकि परशुराम मुनि ब्राह्मण होकर क्षत्रिय थे। गुणों एवं कर्मों के आधार पर उस समय एक ही परिवार में विभिन्न वर्णों के सदस्य हो सकते थे। लेकिन कौटिल्य जिस वर्ण में जन्म लेता था उस आजन्म उसी वर्ण का सदस्य बनकर रहना होता था।⁹

जो दूसरी बात देखने को मिलती थी वह कि कौटिल्य तो क्या बौद्ध एवं जैन के पूर्व के समाज में विशेष वर्ण के लोग जैसा कि ऊपर स्पष्ट है अपने वर्ण द्वारा निर्धारित व्यवस्था से अलग रहकर व्यवसाय करते थे। पर कौटिल्य के समय मनुष्यों के अपने वर्ण द्वारा निर्धारित कार्यों या जीविका के अतिरिक्त कोई अन्य जीविका नहीं कर सकता था।

स्पष्टतः समाज में सभी वर्णों के लोगों के लिए कार्य एवं व्यवसाय निर्धारित थे। कौटिल्य ने लिखा है कि-क्षत्रियस्वाध्ययनं भजनं दानं शस्त्रजीवोभूतक्षण च।¹⁰

यानि कि अध्ययन भजन, दान, शास्त्रजीविका और भूतरक्षण क्षत्रिय का प्रधान कर्म था। ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यायनं यजनं याजनं दानं प्रसंग रचेति।¹¹

यानी ब्राह्मण के छः कर्म थे-वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना। इसी प्रकार वैश्य और शूद्रों द्वारा किये जाने वाले कार्यों का उल्लेख अर्थशास्त्र में है। यों तो वैश्य का मुख्य कार्य कृषि एवं व्यवसाय थे। तात्कालीन समाज में वे अन्य कार्य भी करते थे। यथा अध्ययन भजन एवं दान। कौटिल्य के अनुसार शूद्र को एक मात्र काम समाज के दो बड़े वर्णों के लोगों की सेवा करना था। उसने लिखा है-शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा।¹²

जो तीसरी बात थी वह यह कि उस समय के समाज में किसी भी व्यक्ति को अपने वर्ण से बाहर जाकर विवाह करने की अनुमति नहीं थी। मेगास्थनीज ने अपनी पुस्तक इंडिका में स्पष्ट रूप से लिखा है कि किसी भी व्यक्ति को अपने वर्ण से बाहर विवाह करने एवं अपनी निजी व्यवसाय या शिल्प अपनाने की अनुमति नहीं थी हालाँकि कुछ उदाहरण था कि लोग वर्ण-व्यवस्था की मान्यता से अलग रहकर विवाह भी किए और अपने वर्णों द्वारा निर्धारित व्यवस्था से अलग-अलग व्यवसाय भी करते थे पर ये तो मात्र अपवाद स्वरूप ही थे।

जो चौथी बात देखने को मिलती है वह यह कि समाज में प्रथम तीन वर्णों की स्थिति चौथे वर्ण यानि की शूद्रों की तुलना में काफी अच्छी थी। इन तीन वर्णों को द्विज कहा जाता था।¹³ द्विजों में ब्राह्मण और क्षत्रिय को विशेष सुविधा प्राप्त था। खासकर ब्राह्मण को तो और ही बेहतर स्थिति थी। और हालाँकि प्रथम तीन वर्णों में वैष्णव की स्थिति अन्य दो वर्णों की तुलना में कुछ कम थी। परन्तु इनकी भी स्थिति शूद्रों की तुलना में निश्चित रूप से बेहतर थी। इस तरह द्विजों एवं शूद्रों के बीच सामाजिक दृष्टि से खाई बनी हुई थी।

हालाँकि प्रथम दो वर्णों की तुलना में वैश्यों की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति कमजोर थी। पर चूँकि वाणिज्य-व्यवसाय उनके हाथों में थी और आर्थिक दृष्टि से काफी मजबूत स्थिति में थे इसलिए वे और अपनी सामाजिक और राजनैतिक स्थिति को सुधारने हेतु निरन्तर प्रयत्नशील हो चुकी थी। ऐसी स्थिति में उच्च वर्णों के लोगों के साथ उनका संघर्ष स्वाभाविक ही था। इस तरह कौटिल्यकालीन समाज में एक प्रकार का संघर्ष तो द्विजों एवं शूद्रों के बीच ही था तो दूसरा संघर्ष द्विजों के अन्तर्गत ही थी। इस संघर्ष में वैश्य द्वारा अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति मजबूतीकरण के चलते था।

और जो अन्तिम बात कौटिल्यकालीन सामाजिक व्यवस्था देखने को मिलती है और जिसका अस्तित्व न तो प्राचीनकाल वर्णव्यवस्था में थी और न ही आधुनिक जाति-प्रथा में है वह है समाज में दास-प्रथा का अस्तित्व। यह सच है कि उस समय का समाज मौलिक चार वर्णों में विभक्त था। लेकिन उन चार वर्णों के अतिरिक्त समाज में रहने वाले लोगों की एक और श्रेणी थी और वह थी- दास प्रथा। हालाँकि दास-प्रथा के अस्तित्व पर विद्वानों के बीच मतभेद व्याप्त है। ग्रीक लेखकों की राय में मौर्य कालीनसमाज में दास प्रथा ही नहीं थी। लेकिन कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में समाज में दास-प्रथा के अस्तित्व को स्पष्ट से स्वीकारा है।¹⁴ उसने दो प्रकार के दासों के अस्तित्व को स्वीकारा है-गृहस्थ और श्रमिक दास। प्रथम कोटि के दास यद्यपि निम्नवर्ग के होते थे परन्तु अस्पृश्य नहीं थे। जबकि द्वितीय श्रेणी के दास का उपयोग खाना एवं व्यावसायिक श्रेणियों में किया जाता था।

अपने अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने उन परिस्थितियों का भी जिक्र किया है, जिसके चलते व्यक्ति समाज में दासत्व की श्रेणी को प्राप्त करता था। उसके अर्थशास्त्र में स्पष्ट कहा गया है, कोई आदमी या तो जन्म से या स्वेच्छा से अपने आपको बेचकर अथवा युद्ध में बन्दी बन जाने पर या न्यायालय से दण्ड प्राप्त करके दास होता था।

यह सत्य है कि कौटिल्यकालीन समाज में दास-प्रथा का प्रचलन था। परन्तु उस समाज में दास की स्थिति प्राचीन काल में प्रचलित दास-प्रथा से काफी

मिलती थी। यहाँ दास-प्रथा को यूनान की न सिर्फ सामाजिक मान्यता मिली हुई थी वरन् दासों एवं स्वामी के बीच सम्बन्ध दासों के अधिकारों एवं कर्तव्यों तथा दासता से मुक्ति की भी व्यवस्था थी। स्वामी और दास के बीच वैचारिक सम्बन्धों की चर्चा करते हुए कौटिल्य ने लिखा है कि किसी दासी को स्वामी से पुत्र होता तो न सिर्फ वह पुत्र उसके स्वामी का पुत्र होता था अपितु दासी के दासत्व से भी मुक्ति मिल जाती थी। कौटिल्य के शब्दों में— 'स्वामितः स्वस्यां दास्यां जातं सामातुकम दासं विधाता गृह्णा चैत कुटुम्बार्थ चिन्तनी माता भ्राता भगिनि चास्या, आदासः स्युः।'

निष्कर्षः—स्पष्ट है कि कौटिल्यकालीन समाज में वर्ण-व्यवस्था अपने मौलिक रूप में न तो वर्ण-व्यवस्था ही और न ही उसका विघटित रूप आधुनिक अर्थ में जाति व्यवस्था के समान थी। जैसा कि स्पष्ट हो चुका है कि यद्यपि उस समय लोगों को वर्णाश्रम व्यवस्था से गुजरना पड़ता था और समाज चार वर्णों में विभक्त था। परन्तु न तो लोगों में अपने व्यवसाय और वर्ण बदलने की अनुमति थी और न ही वर्ण-व्यवस्था का आधार ही कर्म था और न ही लोगों को अपने वर्णों से बाहर विवाह करने की अनुमति थी। ये सारी बातें निश्चित रूपसे आधुनिक समाज की जाति-व्यवस्था के अनुरूप हैं। परन्तु इस बात तरह के तथ्यों के बावजूद भी जो व्यवस्था उस समय थी उससे उसे जाति प्रथा कहना उचित नहीं जंचता। क्योंकि जाति-व्यवस्था से भिन्न उस समय लोगों को जैसा कि स्पष्ट है कि वर्णाश्रम व्यवस्था से गुजरना पड़ता था। और समाज में मौलिक रूप से चार ही वर्ण थे। तो प्रश्न उठता है कि समाज में व्यवस्था उसे किस रूप में देखा जाय। इस संबंध में यही कहना समीचीन है कि उस समय वर्ण-व्यवस्था विघटित होकर धीरे-धीरे जाति प्रथा का रूप धारण करती जा रही थी। सच तो यह है कि यह स्थिति वर्ण-व्यवस्था और जाति प्रथा के बीच की स्थिति थी। जिसमें वर्ण एवं जाति दोनों की विशिष्टतायें विद्यमान थी। जिसकी निम्नलिखित विशिष्टतायें थीं—

प्रथम जैर कि उपरोक्त बातों से स्पष्ट है कि वर्ण-व्यवस्था की भाँति समाज चार वर्णों में विभक्त थी पर वर्ण-निर्धारण का आधार कर्म न होकर जन्म रह गया है।

द्वितीय वर्ण-व्यवस्था के विपरीत उस समय में प्रचलित व्यवस्था आधुनिक जाति प्रथा के अनुरूप शादियों सामान्यतः अपने ही वर्णों में ही हुआ करती थी। हालाँकि छिट-पुट रूप में अन्तर्जातीय विवाह भी प्रचलित थे।

तृतीय वर्ण-व्यवस्था अनुरूप लोगों के सिर्फ अपने वर्णों द्वारा निर्धारित व्यवसाय ही करते थे। अपने व्यवसायों एवं कर्मों में परिवर्तन लेकर लोग अपने वर्णों का निर्धारण नहीं कर पाते थे।

चतुर्थ, विभिन्न वर्णों के लोगों के बीच सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से चौड़ी खाईयाँ थीं। और इनके चलते ऊँच-नीच की प्रथा जारी थी जो वही उनके बीच, जैसा कि स्पष्ट हो चुका है कि पारस्परिक संघर्ष भी होते थे। ये सारी बातें वर्ण-व्यवस्था के विपरीत एवं जाति व्यवस्था के अनुरूप होती थी।

पंचम, समाज में वर्ण-व्यवस्था के अनुरूप चार वर्णों के अतिरिक्त एक और वर्ण होते थे और वह था दास-प्रथा। जिसका उल्लेख पहले हो चुका है।

संदर्भ सूची:

1. थापर रोमिला, भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1975, पृ. 69-70
2. नवम्बर, 2, पृ. 237-238
3. वही।
4. वही।
5. वही।
6. वही।
7. वही।
8. वही।
9. वही।
10. गैरोला वाचस्पति, कौटिल्य अर्थशास्त्र, वाराणसी, 1984, पृ. 10
11. गौरोला, वाचस्पति, नवम्बर, 13, पृ. 11
12. उपरिवत्, पृ. 10
13. संख्या 5, पृ. 70
14. शर्मा रामशरण, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, नई दिल्ली, 1992, पृ. 160-163
